बाजार और लोकतंत्र की ताकत से

हिन्दी का बढ़ता रुतबा

○ शैलेन्द्र कुमार

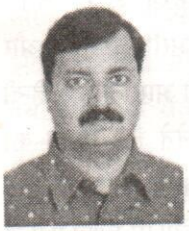

• *जन्म :* *5 जनवरी 1965, ब[redacted]हा, सीतामढ़ी (बिहार)* • *शिक्षा :* *एम.ए. (हिन्दी, अर्थशास्त्र), [redacted], भारतीय [redacted] सेवा उत्तीर्ण।* • *सम्प्रति :* *उप-सचिव, प्रशासनिक एवं कार्मिक विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली में कार्यरत।*

• *कृतित्व :* *अब तक अर्थशास्त्र, भाषा, बाजार और अन्य विषयों पर नौ पुस्तकें प्रकाशित।*

बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न श्री शैलेन्द्र कुमार व्यापार और हिन्दी तथा बाजार और मानवीय जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों पर गम्भीरता से चिन्तन कर लिखने वाले लेखकों में हैं। उन्होंने विश्व के अनेक देशों का दौरा किया है और बाजार के प्रभावों से मानवीय जीवन में आने वाले परिवर्तनों का अध्ययन किया है। इस आलेख में उन्होंने हिन्दी के भविष्य को बाजार और प्रजातन्त्र के माध्यम से देखा है।

भाषा के विकास में बाजार का अमूल्य योगदान रहा है। स्वयं खड़ी बोली का हिन्दी के रूप में विकास इसका एक उदाहरण है। अँग्रेजी के व्यापक प्रयोग के पीछे भी व्यापार के लिए भ्रमणशील अँग्रेजों का हाथ रहा है। महात्मा गाँधी उन गिने-चुने लोगों में थे जो इस पहलू को सबसे अच्छी तरह समझते थे। जब शिक्षा के माध्यम के रूप में भारतीय भाषाओं को स्वीकार किए जाने की चर्चा जोरों पर थी, तब कुछ संदेहवादियों ने यह सवाल खड़ा किया कि भारतीय भाषाओं में पुस्तकें तो हैं ही नहीं, फिर इन्हें माध्यम कैसे बनाया जा सकता है। तात्पर्य यह कि पहले भारतीय भाषाओं में पाठ्यपुस्तकें तैयार कर ली जाएँ फिर इन भाषाओं को माध्यम के तौर पर अपनाया जाए। यह तर्क आज भी दिया जाता है। हालाँकि इसके पीछे एक खतरनाक मंशा होती है कि जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक अँग्रेजी ही चलती रहे। पर महात्मा गाँधी इससे बखूबी परिचित थे। उनका उत्तर था कि सरकार एकाएक माध्यम बदल दे और मैं जानता हूँ कि रातों-रात प्रकाशक भारतीय भाषाओं में पुस्तकें उपलब्ध कराएँगे। उनका ऐसा मानना अक्षरश: सही था। दरअसल प्रकाशक या कहें अन्य व्यावसायियों की कोई भाषा नहीं होती। उनका मुख्य उद्देश्य होता है लाभ कमाना और यदि लाभ हिन्दी से होने लगे तो वे अँग्रेजी में पुस्तकें क्यों छापेंगे?

बाजार की इस ताकत को हमने न समझकर बड़ी भूल की। हम हिन्दी की प्रगति के लिए विवेकशील कम और भावुक अधिक रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि भाषा राजनीति का हिस्सा बन गई और अन्ततः हिन्दी आन्दोलन विलुप्त हो गया। हिन्दी को व्यवसाय, रोजगार, व्यापार आदि से जोड़ना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। दरअसल हमारे समाज में धीरे-धीरे यह धारणा घर कर गई है कि जो अच्छी हिन्दी जानता है वह जरूर कवि या लेखक ही होगा। इसके ठीक विपरीत अँग्रेजी जानने वालों के

विषय में इस तरह की बात नहीं की जाती। इसका कारण यह है कि हिन्दी को सिर्फ साहित्य का ही माध्यम माना जाने लगा।

पर आज परिस्थितियाँ बदली हैं और लगातार बदल रही हैं। मनोरंजन की दृष्टि से हिन्दी आज देश की सबसे बड़ी भाषा है। अँग्रेजी के वर्चस्व के बावजूद हिन्दी सिनेमा, टी.वी. सीरियल आदि की सर्वाधिक लोकप्रिय भाषा है। ध्यातव्य है कि मनोरंजन के ये क्षेत्र कभी भी पूरी तरह सरकार के अधीन नहीं रहे और जब प्राइवेट लोकप्रिय चैनलों की भरमार होने लगी तो हिन्दी चैनलों की संख्या सर्वाधिक हो गई। यहाँ तक कि विचार-विमर्श जैसे विषय अतीत में जहाँ अँग्रेजी जानने वालों की जागीर समझे जाते थे, वे सभी धीरे-धीरे करके हिन्दी में भी आने लगे। डॉ. धर्मवीर लिखते हैं कि 'हमारे देश के विद्वान सदा दुभाषिए रहते हैं। वे राजा और प्रजा की दोनों भाषाओं को जानते हैं।' (हिन्दी की आत्मा, 1989, पृ.20) इस प्रकार आज ऐसे चेहरे टी.वी. पर खूब देखने को मिलते हैं जो अँग्रेजी तथा हिन्दी दोनों चैनलों पर आते हैं। पर प्रश्न उठता है कि क्या ऐसा किसी आन्दोलन ने किया, नहीं, यह सब अपने आप हुआ। सभी जानते हैं कि जब पिछले दो सौ सालों से उपलब्ध अँग्रेजी शिक्षा प्रणाली ने भी दो-तीन प्रतिशत से अधिक देश की जनता को अँग्रेजी पढ़ने लिखने और समझने बोलने लायक नहीं बनाया तो आखिर बड़ी संख्या में दर्शक भारतीय भाषा में ही तो मिलेंगे।

कमोबेश यही स्थिति रेडियो के विभिन्न चैनलों की है। दरअसल रेडियो चैनलों ने तो हिन्दी का और भी अधिक भला किया है क्योंकि अब हिन्दी क्षेत्र ही नहीं बल्कि सुदूर क्षेत्रों में भी हिन्दी गाने खूब सुनने को मिलते हैं। इस सन्दर्भ में यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि जहाँ सरकारी रेडियो चैनल पर सालों से चले आ रहे अँग्रेजी गानों के कार्यक्रम अब भी चल रहे हैं वहीं प्राइवेट चैनल अमूमन सिर्फ हिन्दी गाने ही सुनाते हैं।

कई लोग मानते रहे हैं कि नई तकनीक अँग्रेजी को बढ़ावा देती है। आरम्भ में यह बात सच लगती भी है पर धीरे-धीरे ग्राहकों की माँग के अनुसार तकनीक स्थानीय भाषाओं को अपना लेती है। कम्प्यूटर अभी भारत में और खासकर हिन्दी क्षेत्र में आरम्भिक चरण में है। धीरे-धीरे इसे भी भारतीय भाषाओं को अपनाना पड़ेगा। कुछ हद तक इस ओर प्रयास भी किए गए हैं, पर अभी बहुत कुछ करना शेष है। पर जितना भी हुआ वह सराहनीय है। हिन्दी के सारे के सारे अखबार इन्टरनेट के माध्यम से पढ़े जा सकते हैं। हिन्दी की कई साहित्यिक पत्रिकाएँ भी नेट के माध्यम से पढ़ी जा सकती हैं। राजेश रंजन अपने ब्लॉग 'क्रमशः' पर बताते हैं कि याहू, एमएसएन, एओएल जैसी इन्टरनेट की कई बड़ी कम्पनियों ने हिन्दी सहित अन्य भारतीय भाषाओं की ओर रुख किया है। राजेश रंजन आगे लिखते हैं कि 'फर्ज' कीजिए सिर्फ यूनीकोड समर्थित फॉन्ट ही लोग उपयोग में लाना शुरू कर दें तो फिर हिन्दी की कितनी सामग्रियाँ जमा हो जाएँगी।

असल में हिन्दी की स्थिति अत्यन्त जटिल रही है। अतीत में इसे फारसी ~~और~~ जैसी राज्याश्रय प्राप्त भाषा से जूझना पड़ा तो बाद में अँग्रेजी जैसी विश्वभाषा से। इतना ही नहीं अपनी विकास यात्रा के दौरान हिन्दी को कभी संस्कृत तो कभी उर्दू की ओर खींचा गया। पर देखा जाए तो सिवा अँग्रेजी से जीतने के हिन्दी ने सारी लड़ाइयाँ जीती हैं। अब न तो संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का वैसा आग्रह है और न ही अरबी-फारसी बोझिल उर्दू का दबाव। हिन्दी अपने स्वाभावानुसार आगे बढ़ती जा रही है। इसमें ग्रहण करने और उसको आत्मसात करने की असीम क्षमता है और यही कारण है कि बड़ी आसानी से अहिन्दी भाषी इसे अपना लेते हैं। हिन्दी का स्वभाव ही प्रसारात्मक है। यह अपने आप फैलती रही है। इसीलिए पूरे विश्व में फैले भारतीयों तथा भारतीय मूल के लोगों की जुबान पर चढ़ी हुई है। डॉ. धर्मवीर इस बारे में लिखते हैं कि हर जुबाँ का लफ्ज़ खप जाए ~~वो~~ कुव्वत इसमें है। (हिन्दी की आत्मा, 1989, पृ.222)। अँग्रेजी के बाद चीनी और हिन्दी ही सम्भवतः दो और भाषाएँ हैं जिनमें विश्व भाषा बनने के अनेक गुण विद्यमान हैं।

जैनेन्द्र कुमार ने अपनी पुस्तक 'दर्शाक' में लिखा है कि बल भाषा में नहीं बल्कि उस भाषा का प्रयोग करने वालों में होता है। ऐसा सम्भवतः अब तक नहीं देखा गया कि किसी निर्बल समाज की कोई भाषा अन्य समाजों द्वारा अपनाई गई हो। ~~ऐसा सम्भवतः अब तक~~

~~नहीं देखा गया कि किसी निर्बल समाज की कोई भाषा अन्य समाजों द्वारा अपनाई गई हो।~~ सच तो यह है कि समाज ~~कितना~~ जितना ही निर्बल और पिछड़ा होता है उसकी भाषा के नष्ट होने का खतरा भी उसी अनुपात में होता है। आदिवासियों की सैंकड़ों ऐसी जातियाँ हैं, जिनकी भाषाएँ या तो दम तोड़ चुकी हैं या दम तोड़ रही हैं। पर दूसरी ओर अँग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, जापानी जैसी भाषाओं का निरन्तर विकास हो रहा है। इस तरह भाषा-भाषी की ताकत ही भाषा की असली ताकत है। भारत चूँकि गरीब और गुलाम रहा इसलिए अँग्रेजी की तरफ झुका क्योंकि इससे देश तथा विदेशों में रोजगार की सम्भावनाएँ जुड़ गईं। लेकिन जैसे-जैसे भारत की आर्थिक उन्नति होगी, सम्भवत: अँग्रेजी की जरूरत भी घटती जाएगी। आज के दौर में तो उल्टे विकसित देशों के पढ़े-लिखे बेरोजगार युवक भारत की ओर आस लगाए बैठे हैं कि यहाँ उन्हें रोजगार मिलेंगे। कुछ हद तक ऐसा हो भी रहा है और जो भी बाहर से भारत आ रहे हैं वे या तो अपने देश में या फिर भारत में आने के बाद हिन्दी सीखते हैं।

अँग्रेजी सीखने की अनेक जरूरतों में एक यह गिनाई जाती है कि यह विश्व भाषा है और यदि भारत से बाहर नौकरी करनी है तो इसके ज्ञान के बगैर यह सम्भव नहीं है। यह बहुत हद तक सही भी है क्योंकि भारत से प्रतिवर्ष एक लाख से अधिक छात्रों के विदेश गमन के पीछे एक कारण यह बताया गया है कि विदेशी शिक्षा से उन्हें वहाँ पर नौकरी तथा कालान्तर में नागरिकता हासिल करने में मदद मिलती है। हाल ही (नवभारत टाइम्स, 22 जुलाई 2009) में सुधांशु रंजन ने लिखा कि कुछ छात्र इसलिए भी विदेश जाते हैं क्योंकि वहाँ की नागरिकता प्राप्त करना चाहते हैं। नागरिकता हासिल करने में विदेशी संस्थानों की डिग्री ही सहायक होती है। सुधांशु रंजन आगे लिखते हैं कि विदेश की नागरिकता और भारत की अपेक्षा विदेशों में आसानी से रोजगार मिल जाना प्रतिभा पलायन की एक बड़ी वजह है। अब कल्पना करें कि भारत आर्थिक रूप से सम्पन्न देश बनता है तो बहुत सारी अँग्रेजी जानने की वजहें अपने आप धराशायी हो जाएँगी। सिर्फ इसलिए कि हमें औरों से भिन्न और कुछ खास दिखना है इस नाते बहुत दिनों तक लोग अँग्रेजी के दीवाने नहीं बने रह सकते।

इस दृष्टि से देखा जाए तो उदारीकरण तथा वैश्वीकरण की नीतियाँ कई तरह से हिन्दी के लिए अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुई हैं। राजेश रंजन तो अपने ब्लॉग 'क्रमश:' (9 अप्रैल, 2008) पर लिखते हैं कि 'मुझे तो लगता है कि यही बाजार और उदारीकरण व भूमण्डलीकरण की नीतियाँ जो फिलहाल हमें दुखी कर रही हैं हमें और हमारी भाषा को आगे बढ़ाने में सबसे कारगर होंगी।' आज ऐसे वक्तव्य अतिशयोक्ति लग सकते हैं पर समय सिद्ध करेगा कि हिन्दी कितनी बलवती हुई है।

भाषा की तरक्की का सम्बन्ध आर्थिक सम्पन्नता से है। असल में हिन्दी क्षेत्र तुलनात्मक दृष्टिकोण से शेष भाषा क्षेत्रों से कहीं अधिक पिछड़ा है। फिर शिक्षा की दृष्टि से देखा जाए तो सबसे अधिक अशिक्षित लोग आज हिन्दी क्षेत्र में ही हैं। यह किसी विडम्बना से कम नहीं है कि पूरी दुनिया में संख्या के हिसाब से सर्वाधिक निर्धन और निरक्षर भारत में विराजमान हैं और भारत के अन्दर सर्वाधिक निर्धन और निरक्षर हिन्दी क्षेत्र में ही हैं। दक्षिण के चार राज्य, पश्चिम के दो राज्य तथा उत्तर-पूर्व के राज्य साक्षरता की दृष्टि से हिन्दी क्षेत्र के मुकाबले बहुत आगे हैं। इस दयनीय स्थिति का गहरा अहसास डॉ. रामविलास शर्मा को था और इसीलिए वे अशिक्षा मिटाने पर जोर देते थे। अब एक पल के लिए सोचें कि हिन्दी क्षेत्र में यदि सौ फीसदी साक्षरता हो जाए तो यह क्षेत्र कैसा लगेगा। शेष परिवर्तनों को छोड़कर सिर्फ हिन्दी की बात की जाए तो एक उदाहरण अनायास ही सामने आता है। आजादी के बाद जहाँ अँग्रेजी अखबारों के पाठकों की संख्या में मामूली वृद्धि देखी गई है वहीं हिन्दी अखबारों की संख्या में कई गुनी वृद्धि हुई है। इसका प्रधान कारण यह है कि गाँवों, कस्बों तथा छोटे शहरों में जब साक्षरता बढ़ती है तो नव साक्षर हिन्दी अखबार पढ़ने लग जाते हैं और चूँकि साक्षरों की संख्या में दिनोंदिन वृद्धि होती रही है इसलिए ऐसा होना स्वाभाविक लगता है। इस सन्दर्भ में विकिपीडिया पर दिया गया विश्लेषण काबिलेगौर है -

'पाठकों की संख्या के आधार पर काफी पहले ही भारतीय भाषाओं के

समाचार-पत्र अँग्रेजी के समाचार पत्रों से बहुत आगे निकल गए। इसके अनेक कारण बताए गए हैं..। एक कारण है लगातार बढ़ती साक्षरता। साक्षरता दर में हो रही वृद्धि का पाठकों की संख्या बढ़ाने में बहुत बड़ा हाथ है। असल में राज्यों में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होने के कारण प्रत्येक नवशिक्षित व्यक्ति अपनी भाषा का अखबार पढ़ना चाहता है ताकि उसकी ज्ञान वृद्धि हो। इससे अन्ततः पाठकों की संख्या में भारी वृद्धि देखी जाती है। इसके अलावा भारतीय भाषाओं के समाचार पत्र अनेक स्थानीय संस्करण भी प्रकाशित करते हैं। जाहिर है यह स्थानीयता पाठकों को इन पत्रों से जोड़ती है और पाठक धड़ल्ले से अपनी-अपनी भाषा के पत्र पढ़ते हैं। विज्ञापन कम्पनियों ने भी इन अखबारों की बढ़ती क्षमता को भाँप लिया है और तदनुरूप कम्पनियाँ इन्हें विज्ञापन भी देने लगी हैं।'

पर सबसे बड़ी बात यह है कि देशभर में छपने वाली सभी पत्र-पत्रिकाओं का 40 प्रतिशत हिस्सा हिन्दी भाषा के खाते में जाता है। पर यह स्थिति भी आने वाले दिनों की झलक भर ही है क्योंकि हिन्दी क्षेत्र में अभी पूरी तरह शिक्षा फैलनी शेष है। यहाँ ध्यान देने योग्य एक और तथ्य यह है कि अँग्रेजी अखबारों की कीमत आज हिन्दी अखबारों की तुलना में कम है क्योंकि सरकार और कम्पनियाँ आज अँग्रेजी अखबारों को तरहीज दे रही है। इस नजरिए से अगर देखें तो हिन्दी अखबारों का अधिक मूल्य पर और बड़ी संख्या में बिकना एक बड़ी उपलब्धि है।

हिन्दी भाषा पर राजनीति का भी प्रभाव पड़ता रहा है। इस परिप्रेक्ष्य में डॉ. रामविलास शर्मा का चिन्तन प्रासंगिक है। उनकी बेबाक राय थी कि जब भाषा के आधार पर राज्य बनाए गए तो पूरे हिन्दी क्षेत्र को एक ही राज्य बनाना चाहिए था। उन्होंने प्रशासनिक आधार पर हिन्दी को कई राज्यों में बाँटने की नीति को सिरे से नकारा था। उनका कहना था कि जब सोवियत संघ में रूस जितना बड़ा एक राज्य हो सकता था तो हिन्दी क्षेत्र क्यों नहीं। हिन्दी क्षेत्र को कई भागों में बाँटना डॉ. शर्मा के हिसाब से हिन्दी की पहचान को तोड़ने जैसा था। वे तहेदिल से मानते थे कि यदि हिन्दी क्षेत्र एक राज्य होता तो हिन्दी के लिए जो समन्वित संघर्ष और चिन्ता होती उससे हिन्दी का बड़ी तेजी से विकास होता। पर ऐसा नहीं हुआ और हिन्दी क्षेत्र हरियाणा, हिमाचल से लेकर छत्तीसगढ़ तक कई राज्यों में बँटा। इतना ही नहीं, अभी हाल ही में हिन्दी राज्यों का पुनर्विभाजन हुआ है। खैर, हिन्दी राज्य तो अनेक हो गए पर ऐसी स्थिति पहली बार बनी है जबकि दूसरे राज्य बँटने वाले हैं। पश्चिम बंगाल में गोरखालैण्ड और आन्ध्रप्रदेश में तेलंगाना का निर्माण बस समय की बात है। फिर महाराष्ट्र को तोड़कर विदर्भ बनाने की माँग भी जोरों पर है।

इस घटनाक्रम से अब ऐसा लग रहा है कि जैसी स्थिति हिन्दी राज्यों की है, वैसी ही अन्य राज्यों की होगी, जिससे कम से कम हिन्दी विरोध की धार जरूर कुन्द होती जाएगी। इसका कारण यह हो सकता है कि एक भाषा और एक राज्य का समीकरण एक खास पहचान के साथ काम करता है पर विभक्त होते ही यह पहचान भी खण्डित हो जाती है और उत्तरदायित्व का भाव भी घटता है। इस तरह यह प्रक्रिया भी कालान्तर में हिन्दी के लिए लाभकर सिद्ध होगी।

गहन विचार से ऐसा लगता है कि आर्थिक विकास तथा लोकतंत्र का सुदृढ़ीकरण दो ऐसे कारक हैं, जिनसे हिन्दी का बहुत लाभ हो सकेगा। लोकतंत्र का उत्तरोत्तर विकास अधिक से अधिक लोगों से जुड़ने के प्रयास पर निर्भर है। इस नजरिए से देखें तो सत्ता केन्द्र से राज्य और राज्यों से पंचायतों की ओर जा रही है। हम आसानी से कल्पना कर सकते हैं कि आने वाले दिनों में जब लाखों पंचायतें और मजबूत होंगी तथा उनके अधीन शिक्षा, कर व्यवस्था, कानून व्यवस्था जैसे भूभाग पूरी तरह होंगे तो इनके सारे क्रिया-कलाप स्थानीय भाषाओं में ही होंगे। आज भी ऐसा ही हो रहा है पर कालान्तर में भाषा का प्रयोग और बढ़ेगा क्योंकि लोगों की साक्षरता बढ़ेगी और उनकी पंचायतों में सक्रिय भागीदारी भी।

यह हिन्दी भाषियों की बढ़ती ताकत का ही परिणाम है कि आज टी.वी. पर डिस्कवरी, नेशनल ज्योग्राफिक जैसे अँग्रेजी के चैनल अपने कार्यक्रम हिन्दी में डब करके दर्शकों को परोस रहे हैं। दूसरी ओर अब हिन्दी समाचार, टी.वी. सीरियल आदि सीधे-सीधे विदेशों में प्रसारित होने लगे हैं। भारत के बाहर रह रहे दो करोड़

से भी ज्यादा भारतवंशी तथा अनिवासी भारतीय आर्थिक दृष्टि से बहुत बड़ा बाजार मुहैया कराते हैं। अतीत में जब संचार और मनोरंजन के साधन इतने सुलभ नहीं थे तो ये लोग भारतीय और विशेषकर हिन्दी समाचार, सीरियल आदि से वंचित रह जाते थे। इसका एक परिणाम तो यह हुआ कि फिजी और सूरीनाम जैसे सुदूर देशों में भारतवंशियों की बाद की पीढ़ियाँ हिन्दी से दूर हो गई। पर अब शायद ऐसा न हो। अब उन्हें भारत से चौबीसों घण्टे जुड़े रहने का साधन हाथ लग गया है। इससे न केवल भाषा वरन् भारतीय संस्कृति से भी ये लोग लगातार जुड़े रहेंगे।

इसके अलावा यह भी हाल ही की बात है कि हिन्दी फिल्में एक साथ विदेशों में भी रिलीज होने लगी हैं। कहा जाता है कि हिन्दी फिल्में सिर्फ अनिवासी भारतीयों तथा भारतवंशियों में ही नहीं बल्कि पूरे दक्षिण एशिया, दक्षिण पूर्व एशिया, पश्चिम एशिया, चीन, रूस आदि देशों में भी लोकप्रिय हैं। दूसरी ओर विदेशी भाषाओं की फिल्में हिन्दी में डब करके टी.वी. तथा सिनेमाघरों में दिखाई जा रही हैं। इस तरह देखा जाए तो हिन्दी का प्रयोग दो तरफा ट्रैफिक की तरह दोनों दिशाओं में हो रहा है। संचार तथा मनोरंजन के क्षेत्रों में हिन्दी के निरन्तर प्रयोग का श्रेय सीधे तौर पर वैश्वीकरण तथा उदारीकरण की नीतियों तथा नई-नई तकनीकी क्रान्तियों को जाता है, जिनसे परिवर्तन की प्रक्रिया बहुत तेज हो गई है। दरअसल बाजार तथा लोकतंत्र दोनों स्वभाव से अधिकतम लोगों से जुड़ना चाहते हैं और संयोग से हिन्दी को इन दोनों से अभूतपूर्व मदद मिली है।

बाजार की ताकत क्या होती है इसका अंदाजा आज उर्दू लिपि की स्थिति से भी लगाया जा सकता है। इस सन्दर्भ में नामवरसिंह कहते हैं कि आज उर्दू लिपि सबसे बड़े खतरे से जूझ रही है। जिस गति से उर्दू पुस्तकों का नागरी लिपि में लिप्यन्तरण हो रहा है उससे लगता है कि आने वाले दिनों में उर्दू की पुस्तकें सीधे-सीधे नागरी लिपि में ही प्रकाशित होने लगेंगी। नामवरसिंह निदा फाज़ली का एक शेर कहते हैं - **सब मेरे चाहने वाले हैं, मेरा कोई नहीं/मैं भी देश में उर्दू की तरह रहता हूँ।** (नामवरसिंह द्वारा दिया गया 'जाकिस हुसैन मेमोरियल लेक्चर', 26 फरवरी 2001)

पर दिलचस्प पहलू यह है कि हम इस स्थिति से आश्चर्यचकित हो सकते हैं पर डॉ. रामविलास शर्मा के लिए यह एक अत्यन्त स्वाभाविक प्रक्रिया है। सालों पहले उन्होंने लिखा कि 'भविष्य में उर्दू लेखकों की रचनाएँ देवनागरी लिपि में ही प्रकाशित होंगी।' (भाषा और समाज, 1977)। इसका सीधा-सा कारण यह है कि बाजार तथा भाषा के अर्न्तसम्बन्ध को जितनी अच्छी तरह डॉ. रामविलास शर्मा समझते थे, शायद ही अन्य जानकार समझते हों। उर्दू लिपि के प्रयोग को कम या समाप्त करने के लिए न तो कोई आन्दोलन चलाया गया और न ही किसी तरह का बल प्रयोग ही हुआ है। स्पष्ट है कि उर्दू की ऐसी स्थिति के लिए सिर्फ बाजार जिम्मेदार हैं जहाँ उर्दू लिपि में छपी पुस्तकों की माँग लगातार घट रही है।

इसलिए भाषा को बाजार से जोड़ना बहुत जरूरी है। संयोग से हिन्दी का बाजार से गहरा सम्बन्ध स्थापित हो चुका है और हिन्दी आगे बढ़ती जा रही है। हिन्दी क्षेत्र की गरीब जनता की ज्यों-ज्यों क्रय शक्ति बढ़ेगी, हिन्दी का उत्तरोत्तर विकास होता जाएगा। पर फिर भी कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि हिन्दी के लिए सब कुछ अच्छा नहीं है। राजीव कृष्ण सक्सेना यह तो मानते हैं कि व्यावहारिक हिन्दी अभी भी बहुत लोकप्रिय है। हिन्दी अखबार अँग्रेजी अखबारों से दस गुना ज्यादा बिकते हैं और हिन्दी टी.वी. चैनलों के दर्शक अँग्रेजी चैनलों की अपेक्षा बहुत ज्यादा हैं। परन्तु सक्सेना की चिन्ता यह है कि उच्चकोटि की हिन्दी के पाठक कम हो रहे हैं। यह न केवल हिन्दी साहित्य के लिए खतरे की घण्टी है पर हमारे राष्ट्र के बौद्धिक भविष्य के लिए भी एक बेहद चिन्ता का विषय है। सक्सेना आगे लिखते हैं कि भाषा मानव के विकसित मस्तिष्क से उपजी है और दोनों ही अपनी विकास गतियों को कायम रखने के लिए एक-दूसरे पर निर्भर हैं। ज्यों-ज्यों भाषा का विकास हुआ त्यों-त्यों मानव चिन्तन को विकास के नए सोपान मिले।

सक्सेना की इस चिन्ता में निस्सन्देह कुछ दम है क्योंकि यह सही है कि उच्च कोटि की हिन्दी के पाठकों की संख्या कम हो रही है। पर इसकी एक वजह यह हो सकती है कि उच्च शिक्षा में विशेषकर

महानगरों में चूँकि अँग्रेजी की अनिवार्यता कायम है और चूँकि नौकरियों के लिए भी छात्र अँग्रेजी का ही सहारा लेते हैं इसलिए ये छात्र उच्चकोटि की हिन्दी के पाठक नहीं बन पाते हैं। हिन्दी के लिए यह स्थिति कष्टप्रद है। परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इस देश में भाषा की समस्या का निदान आसान नहीं है और इस तरह की जटिल समस्या के समाधान की उम्मीद सरकार को करना भी उचित नहीं लगता है क्योंकि लोकतंत्र में सबकी भावनाओं का ख्याल करना सरकार की मजबूरी होती है। ऐसे में अँग्रेजी की अनिवार्यता का समाप्त होना सरल नहीं लगता। सरकार की इस मजबूरी से हमें निराश नहीं होना चाहिए क्योंकि अतीत में भी और आज भी यदि हिन्दी आगे बढ़ी है तो इसका कारण सरकार नहीं बल्कि आम जनता रही है। दरअसल यह कहना अनुचित नहीं होगा कि यह सरकार के बावजूद बढ़ी है। इस तरह देखा जाए तो जिन कारणों से हिन्दी आगे बढ़ रही है उन्हीं कारणों से आगे भी बढ़ती रहेगी और ऐसा भी समय आएगा जब हिन्दी क्षेत्र का बौद्धिक वर्ग अँग्रेजी की तरह हिन्दी का प्रयोग करेगा।

वैसे सक्सेना जिस उच्चकोटि की हिन्दी की बात करते हैं उसकी हमें कितनी जरूरत है यह भी विचार करने योग्य है। इस तरह की हिन्दी की चर्चा करने से पहले हमें यह भी सोचना चाहिए कि ज्ञान-विज्ञान के सभी विषयों में प्रयोग की दृष्टि से हिन्दी कोई बहुत पुरानी भाषा नहीं है। खासकर यदि इसकी तुलना अँग्रेजी या संस्कृत जैसी भाषाओं से करें तो यह बात और भी साफ हो जाती है। इसलिए अपने आरम्भिक काल में सम्भव है कि हिन्दी कुछ कामचलाऊ भाषा लगे। पर यह जरूरी भी है क्योंकि अधिक से अधिक लोगों तक इसकी पहुँच के पीछे इसकी सरलता और सादगी ही है। फिर भी यह सच है कि सर्वत्र कामचलाऊ हिन्दी का प्रयोग नहीं होता है। टी.वी. पर दिखाए जाने वाले डिस्कवरी तथा नेशनल ज्योग्राफिक जैसे चैनलों पर अच्छी हिन्दी प्रयुक्त हो रही है। असली बात तो यह है कि उच्च स्तर पर जब तक हिन्दी का प्रयोग अनिवार्य नहीं होगा तब तक उच्च कोटि के पाठक भी नहीं बढ़ेंगे। हिन्दी को ध्यान में रखते हुए डॉ. धर्मवीर सिंह को इसके तीन रूप एक साथ दिखते हैं जिनमें एक बोलचाल की हिन्दी का है। वे कहते हैं कि 'यह हर किसी को मानना पड़ेगा कि यह आज भी हिन्दुस्तानी हिन्दी है। इसका दूसरा रूप इसकी साहित्यिक भाषा है।' डॉ. धर्मवीर मानते हैं कि यह अपनी-अपनी चाह की बात है कि लेखक भाषा के किस चुनाव या शैली को अपनाता है। इसका तीसरा रूप सरकारी भाषा का है। भारत सरकार ने हिन्दी के लिए एक भाषा नीति अपना रखी है। यह केवल विधि की भाषा है जो अपने अर्थों में जटिल हो जाती है।(हिन्दी की आत्मा, 1989, पृ. 229)

डॉ. धर्मवीर के हिसाब से विधि की भाषा को छोड़ दिया जाए तो शेष क्षेत्रों में सीधी-सादी भाषा से काम चलाया जा सकता है। जहाँ तक साहित्य का प्रयोग किया है, इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि डॉ. रामविलास शर्मा को बतौर कवि नागार्जुन अत्यन्त प्रिय थे। डॉ. शर्मा लिखते हैं कि 'हिन्दी भाषा प्रदेश के किसान और मजदूर जिस तरह की भाषा आसानी से समझते और बोलते हैं, उसका निखरा हुआ काव्यमय रूप नागार्जुन के यहाँ है।'(नयी कविता और अस्तित्ववाद, 1993, पृ. 153) इस प्रकार देखा जाए तो उच्चकोटि की भाषा तकनीकी विषयों तथा कुछ सीमा तक साहित्य के लिए जरूरी हो सकती है। पर शेष क्षेत्रों में जिस तरह की भाषा प्रयुक्त होती है उससे हमें दुखी होने की जगह खुश होना चाहिए।

अत: इसमें दो राय नहीं होनी चाहिए कि हमारी आर्थिक सम्पन्नता भविष्य में हमें हिन्दी की ओर बढ़ने को प्रेरित करेगी। अनौपचारिक तौर पर ऐसा होने भी लगा है। हिन्दी का माहौल तैयार हो चुका है। अपने आप अहिन्दी भाषी इसके बोलचाल के रूप में अपना रहे हैं। अय्यर लिखते हैं कि कैसे उनके देखते-देखते ही लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी जहाँ आई.ए.एस. का प्रशिक्षण होता है, का माहौल हिन्दीमय हो गया है। अय्यर अपनी रिपोर्ट में किसी अधिकारी के अनुभव का जिक्र इस प्रकार करते हैं - 'हम लोग प्रशिक्षणार्थियों के किसी सांस्कृतिक कार्यक्रम को देखने पहुँचे। वहाँ कई कार्यक्रमों जैसे स्किट आदि का आयोजन किया गया था। जब मैं अपने समय को याद करता हूँ तो पाता हूँ कि तब वहाँ सौ प्रतिशत अँग्रेजी थी।

अब नब्बे प्रतिशत हिन्दी है।'

इस तरह देखें तो अँग्रेजी का व्यामोह चहुँदिस घट रहा है। डॉ. धर्मवीर के इस विचार से हम सभी इत्तेफाक रखेंगे कि 'अँग्रेजी के बारे में सभी जानते हैं कि हिन्दुस्तान में यह कितने कम लोगों की दफ्तरी भाषा है। भारत की आम जनता का अँग्रेजी से कुछ लेना-देना नहीं है।' (हिन्दी की आत्मा, 1989, पृ.24)। और यह हाल तब है जब दो सौ सालों से इस देश में अँग्रेजी पढ़ाई जा रही है।

वैश्वीकरण तथा उदारीकरण के इस युग में दूरियाँ घट रही हैं और इसका एक लाभ यह भी है कि हिन्दी जैसी व्यापक भाषा का प्रयोग और भी व्यापक पैमाने पर हो रहा है। चूँकि हिन्दी सदा विकास मान भाषा रही है इसलिए वह आगे बढ़ती ही जाएगी। इस सन्दर्भ में जरूरी है कि हिन्दी क्षेत्र के सभी लोग शिक्षित हों। जब अपनी भाषा में शिक्षित होने वालों की संख्या बहुत ज्यादा हो जाएगी तो स्वमेय लोकतंत्र यह सुनिश्चित करेगा कि जनता की इच्छा आकांक्षा को व्यक्त करने वाली भाषा ही सर्वत्र प्रयुक्त हो। ●